अनुबोधन, खण्ड 1, अंक 3, सितम्बर 2025, पृष्ठ 78–85
ISSN: 3049-4184 (प्रिन्ट), 3108-1185 (ऑनलाइन)
प्रकाशित: 30 सितम्बर 2025
जर्नल वेबसाइट: **https://anubodhan.org**

मानव स्वातंत्र्य: जे.कृष्णमूर्ति और जे. पी. सार्त्र

डॉ. हरि नारायण *

सारांश

प्राचीन काल से ही मनुष्य की स्वतंत्रता को लेकर दो परस्पर विरोधी विचारधाराएं चलती आ रही हैं। एक विचारधारा का यह मानना है कि मनुष्य में इच्छा स्वातंत्र्य है अर्थात वह अपने कार्यों को करने में पूर्ण स्वतंत्र है, लेकिन दूसरी विचारधारा मानती है कि मनुष्य स्वतंत्र नहीं है और बाह्य परिस्थितियों से परिचालित होता रहता है। वैसे मनुष्य खुद को प्रायः बंधनों में ही पाता है और इन बंधनों में जीते हुए वह स्वतंत्रता की आकांक्षा करता रहता है। क्या मनुष्य का अस्तित्व स्वतंत्र है या वह बंधनों में जीने के लिए अभिशप्त है? यदि उसका अस्तित्व स्वतंत्र है, तो फिर उसकी वर्तमान अवस्था बंधनों में क्यों जकड़ी है? वह विभिन्न नियमों, नैतिक मानदंडों, परंपराओं, ईश्वर आदि का सहारा क्यों खोजता रहता है? ये सभी मानव अस्तित्व से जुड़े हुए बुनियादी प्रश्न हैं। 20वीं सदी के प्रख्यात भारतीय आध्यात्मिक मनीषी जे. कृष्णमूर्ति मानव अस्तित्व की प्रकृति, उसके होने के ढंग का अत्यंत सूक्ष्मता से अवलोकन करते हैं और वास्तविक स्वतंत्रता के आयाम को उद्घाटित करते हैं। 20वीं सदी के ही फ्रांस के प्रसिद्ध अस्तित्ववादी दार्शनिक जे. पी. सार्त्र भी इन प्रश्नों पर विचार करते हैं और मानव अस्तित्व को पूर्ण रूप से स्वतंत्र बताते हैं। अस्तित्ववाद आधुनिक काल की एक बहुत ही महत्वपूर्ण दार्शनिक विचारधारा है जिसमें मनुष्य की स्वतंत्रता पर अत्यधिक बल दिया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में इन दोनों प्रसिद्ध विचारकों की दृष्टि के आलोक में मानव स्वतंत्रता के विविध आयामों के विवेचन का प्रयास किया गया है।

प्रमुख शब्द: *अस्तित्ववाद, स्वातंत्र्य, सार, स्वचेतन, आत्म-प्रवंचना, संस्कारबद्धता, प्रज्ञा का जागरण।*

---

*सहायक आचार्य, दर्शनशास्त्र विभाग, बलि राम भगत महाविद्यालय, समस्तीपुर, बिहार

प्रस्तावना

मनुष्य के लिए स्वतंत्रता या आजादी का बहुत महत्व है। रूसो ने कहा था कि मनुष्य स्वतंत्र पैदा होता है लेकिन हर जगह वह बेड़ियों में जकड़ा होता है। तो यह एक तथ्य है कि मनुष्य का जीवन हमेशा बंधन में होता है, दुःख से भरा हुआ होता है। फिर इस स्थिति में मनुष्य की स्वतंत्रता कैसे संभव है? मनुष्य के अस्तित्व और उसकी स्वतंत्रता को सर्वोच्च प्राथमिकता देने वाले अस्तित्ववादी दर्शन का विकास 19वीं और 20वीं सदी में यूरोप में हुआ, इस परंपरा के प्रमुख दार्शनिक थे जे. पी. सार्त्र। उनके प्रमुख कथन हैं- मनुष्य का अस्तित्व उसके सार का पूर्ववर्ती है और मनुष्य स्वतंत्र होने के लिए अभिशप्त है। सही अर्थ में केवल मनुष्य का ही अस्तित्व हो सकता है, क्योंकि केवल मनुष्य में ही स्वतंत्र क्रिया संभव है, अतः अस्तित्ववाद मानव अस्तित्व का ही दर्शन है। उनके अनुसार मनुष्य का व्यक्तित्व पूर्व निर्धारित नहीं होता, पूर्व निर्धारित उसमें कुछ नहीं होता है, वह अपनी स्वतंत्र क्रियाओं के द्वारा ही अपने व्यक्तित्व या सार(Essence)का निर्माण करता है। जे. कृष्णमूर्ति, जो आधुनिक युग के प्रख्यात रहस्यदर्शी और आध्यात्मिक शिक्षक थे, वे भी मानव स्वतंत्रता को सर्वोच्च प्राथमिकता देते थे। उनके अनुसार वास्तविक स्वतंत्रता के अनुभव के बिना मनुष्य जीवन का कोई अर्थ नहीं है। लेकिन वे मनुष्य की स्वतंत्रता को अत्यंत ही मौलिक और यथार्थ रूप में देखते थे। कृष्णमूर्ति मनुष्य को पूर्ण रूप से और बेशर्त स्वतंत्र देखना चाहते थे। उनके अनुसार बाहरी दुनिया की आजादी तो गौण है, सबसे मुख्य है आंतरिक आजादी या मन की आजादी जो वास्तविक नियामक है। इसलिए वे राजनीतिक या आर्थिक स्वतंत्रता को सतही मानते थे, यह आवश्यक तो है, लेकिन पर्याप्त नहीं है। वे पूर्ण और वास्तविक स्वतंत्रता की बात करते हैं, जिसमें मनुष्य के सभी दुःख तिरोहित हो जाते हैं और जिसे कोई भी बाह्य या मानसिक विक्षेप बाधित नहीं कर सकता है। आगे हम इन दोनों विचारकों के स्वतंत्रता संबंधी विचारों का तुलनात्मक विवेचन करेंगे।

स्वतंत्रता पर जे.पी. सार्त्र के विचार

सार्त्र मनुष्य के अस्तित्व को उसके सार का पूर्ववर्ती मानते हैं। मनुष्य एक स्वचेतन (अपने लिए सत, being-for-itself) प्राणी है। इसका अस्तित्व या सत पहले होता है, इसके साथ और कुछ नहीं होता है अर्थात उसका सार रिक्त या शून्य (nothing) होता है। यही रिक्त या शून्य चेतना को उत्पन्न करता है और चेतना हमेशा किसी विषय की होती है। सार्त्र ईश्वर की सत्ता को नहीं स्वीकार करते। इसी शून्य चेतना के कारण चेतन मनुष्य एकाकी हो जाता है। इसलिए वह पूर्णतः स्वतंत्र है। उसके पास पूर्व निर्धारित कुछ नहीं होता। वह अपनी स्वतंत्र क्रियाओं और चुनाव के द्वारा अपने सार का निर्माण कर सकता है अर्थात कुछ बन सकता है। पूर्ण स्वतंत्रता के कारण उसके ऊपर पूर्ण उत्तरदायित्व भी आ जाता है। इस उत्तरदायित्व का वहन उसे इतना कठिन या असहनीय लगता है कि वह इससे पलायन का उपाय खोजने लगता है। फिर वह किसी परिस्थिति का या नैतिक नियम का या कोई और बहाना बनाकर इससे पलायन कर जाता है और अपनी स्वतंत्रता को नकार देता है। सार्त्र इसे आत्म-प्रवंचना (Bad Faith) कहते हैं। इस प्रकार आत्म-प्रवंचना में पड़ कर मनुष्य अपनी सही भूमिका अदा नहीं करता। ऐसा मनुष्य सही अर्थ में अस्तित्ववान नहीं है। सही अर्थ में अस्तित्ववान वही है जो किसी आत्म-प्रवंचना में नहीं पड़ता है और अपने को पूर्णतः स्वतंत्र मानता है। सार्त्र के दर्शन में मनुष्य के मार्गदर्शन के लिए न तो ईश्वर है, न कोई मूल्य है,और न ही कोई नैतिक नियम है। ऐसी पूर्ण स्वतंत्रता से मनुष्य निश्चित रूप से वेदना या संताप से घिर जाता है लेकिन सार्त्र के अनुसार मनुष्य का आंतरिक स्वरूप ही ऐसा है और मनुष्य को इससे भागना नहीं चाहिए बल्कि इसे स्वीकार करते हुए बहादुरी से इसका सामना करना चाहिए तभी वह प्रामाणिक मनुष्य बन सकता है।

स्वतंत्रता पर जे. कृष्णमूर्ति के विचार

जे. कृष्णमूर्ति स्वतंत्रता पर समग्रता से विचार करते हैं। उनके लिए स्वतंत्रता का अर्थ है आंतरिक स्वतंत्रता या मन की स्वतंत्रता। आंतरिक स्वतंत्रता का अर्थ है भय,इच्छा, भूतकाल की संस्कारबद्धता (Conditioning) आदि मनोविकारों से स्वतंत्रता। उनके अनुसार आर्थिक या राजनीतिक स्वतंत्रता सच्ची स्वतंत्रता नहीं है, आंतरिक स्वतंत्रता ही सच्ची स्वतंत्रता है और यही बाहरी स्वतंत्रता का निर्णायक भी है। आंतरिक स्वतंत्रता से ही व्यक्ति के

जीवन में आमूल- चूल परिवर्तन हो सकता है। वे कहते हैं, "स्वतंत्रता एक मनोदशा है, यह किसी चीज से मुक्ति नहीं है, बल्कि एक स्थायी भाव है, एक ऐसी स्वतंत्रता जो किसी भी चीज पर संदेह कर सकती है, उसकी छानबीन कर सकती है और इसलिए इतनी सघन, सक्रिय और तीव्र होती है कि यह सभी प्रकार की निर्भरता, दासता, अनुरूपता और मान्यता को उखाड़ फेंकती है। ऐसी स्वतंत्रता का अर्थ होता है- पूरी तरह अकेला होना। लेकिन क्या हमारा मन, जो एक ऐसी संस्कृति में पला बढ़ा है, जो बहुत हद तक अपने वातावरण पर निर्भर है, स्वतंत्रता की इस अवस्था को पा सकता है, जहां पूर्ण एकाकीपन हो और कोई मार्गदर्शक, परंपरा या प्राधिकार(Authority) न हो"[1]।

उनके अनुसार यह विशुद्ध एकाकीपन(Aloneness) मन की आंतरिक दशा है, जो किसी भी बाह्य उद्दीपक या ज्ञान पर निर्भर नहीं है और न ही किसी अनुभव या निष्कर्ष का परिणाम है। यह एकाकीपन अलगाव (isolation) के अर्थ में नहीं है, बल्कि अस्तित्व की समग्रता है। इसके अतिरिक्त कुछ बचता ही नहीं, इसलिए यह विशुद्ध अकेला है।

कृष्णमूर्ति के अनुसार हमारे मन की जो वर्तमान दशा है वह भूतकाल की संस्कारबद्धता का परिणाम है। हम भूतकाल की स्मृतियों और इसी के आधार पर भविष्य की कल्पनाओं में ही जीते रहते हैं। यह सब विचार के जाल हैं। विचार ने ही यह सब बुना है। इस प्रकार हमारा जीवन विचार से पूरी तरह आक्रांत है। इस विचार ने ही हमारे अंदर 'स्व' या 'द्रष्टा'(Self,Observer) का भ्रम पैदा किया है। विचार ने अपने ही एक हिस्से को नियंत्रक (द्रष्टा, स्व, मैं) और दूसरे हिस्से को नियंत्रित (यह, दृश्य) मान लिया है। यह काल्पनिक विभाजन ही सभी उपद्रवों, सभी संघर्षों की जड़ है और यही हमारी वास्तविक स्वतंत्रता में मूल बाधा है। अतः स्पष्ट है कि जब तक हम विचार के क्षेत्र में हैं, हम वास्तविक रूप में स्वतंत्र नहीं हो सकते। तो क्या विचार के क्षेत्र के बाहर हमारे अस्तित्व का कोई आयाम संभव है? कृष्णमूर्ति के अनुसार जब हम अपनी वर्तमान अवस्था, संस्कारबद्धता की अवस्था के प्रति चयनरहित

होकर सजग होते हैं तो तत्काल हम इस संस्कारबद्धता से मुक्त हो जाते हैं और तत्काल स्वतंत्र हो जाते हैं, बौद्धिक रूप से नहीं, शाब्दिक रूप से नहीं, बल्कि वास्तव में। चुनाव रहित सजगता (Choiceless Awareness) की कोई दिशा नहीं होती है, उसका कोई लक्ष्य नहीं रहता है, बस 'जो है' उसके प्रति सजग हो जाना है। इस प्रकार की सजगता विचार के क्षेत्र के बाहर है। इस सजगता में हम समग्र अस्तित्व हो जाते हैं, "मैं" और "यह" का काल्पनिक विभाजन मिट जाता है। यही वास्तविक स्वतंत्रता है, अस्तित्वगत स्वतंत्रता है। वे कहते हैं, "जब आप अपनी संस्कारबद्धता के प्रति सजग होते हैं तो आप अपनी पूरी चेतना को समझते हैं। आपकी चेतना वह संपूर्ण क्षेत्र है जिसमें विचार कार्य करते हैं और संबंधों का अस्तित्व है। सभी लक्ष्य, इरादे, इच्छाएं, सुख, दुःख, भय, आशा, निराशा इसी क्षेत्र में कार्य करती हैं। यदि आप चेतना के इस पूरे क्षेत्र के प्रति सजग हो सकते हैं तो आप पूर्ण अवधान (attention) में हैं, समग्रता में हैं, तब कोई संघर्ष नहीं है।"[2]

तुलनात्मक विश्लेषण

यदि हम मानव स्वातंत्र्य के संबंध में जे. कृष्णमूर्ति और जे.पी. सार्त्र के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन करें तो हम पाते हैं की कुछ बिंदुओं पर दोनों में समानता है जबकि कई मौलिक बातों में दोनों में अंतर भी है। दोनों ही मनुष्य की पूर्ण स्वतंत्रता के पक्ष में है जहां किसी नियम, किसी नैतिकता, किसी मानदंड या किसी भी प्राधिकार की कोई मार्गदर्शक भूमिका नहीं है। दोनों के विचारों में कुछ प्रमुख अंतर निम्नवत देखे जा सकते हैं-

1. यहां सार्त्र मानते हैं कि मनुष्य के अस्तित्व में जो शून्यता(nothingness)है, उसके कारण वह अपनी इस स्थिति से परे जाना चाहता है और स्वतंत्र चयन और कर्म के द्वारा कुछ होने की प्रक्रिया ही उसकी स्वतंत्रता है, जबकि कृष्णमूर्ति के अनुसार कुछ बनने या कुछ होने की जद्दोजहद से मुक्त होने के बाद ही सच्ची स्वतंत्रता आ सकती है। उनके अनुसार 'जो है' (तथ्य) के प्रति चयनरहित सजगता अर्थात उसे सीधे देख लेने में ही (बिना विचार के हस्तक्षेप के, बिना भूत या भविष्य के बोझ के) स्वतंत्रता है।

2. सार्त्र के अनुसार स्वतंत्रता बिना विचार के नहीं आ सकती जबकि कृष्णमूर्ति के अनुसार सच्ची स्वतंत्रता विचार के क्षेत्र से परे की अवस्था है। कृष्णमूर्ति कहते हैं, "विचार की खूबसूरती देखिए, विचार कैसे यांत्रिक रूप से कार्य करता है। विचार स्वयं से कहता है: 'मैं कार्य करने के लिए स्वतंत्र हूँ।' फिर भी विचार कभी स्वतंत्र नहीं होता क्योंकि यह ज्ञान पर आधारित होता है और ज्ञान स्पष्ट रूप से हमेशा सीमित होता है क्योंकि यह समय का हिस्सा है"।[3]

3. सार्त्र के अनुसार स्वतंत्रता कुछ होने या कुछ बनने की सतत प्रक्रिया (Becoming) है जिसमें भूत, वर्तमान और भविष्य सब जुड़े हैं जबकि कृष्णमूर्ति के अनुसार स्वतंत्रता वर्तमान में है, यह अपनी संस्कारबद्धता की प्रक्रिया के प्रति सजग होने से तत्काल आती है। यह तत्काल एक अंतर्दृष्टि के रूप में आती है। यह कोई प्रक्रिया नहीं है।

4. सार्त्र के अनुसार मनुष्य स्वतंत्र होने के लिए अभिशप्त है। लेकिन इस स्वतंत्रता में पीड़ा और निराशा अपरिहार्य है क्योंकि उनके अनुसार मनुष्य की चेतना रिक्त होती है, उसमें कुछ नहीं होता है। वे कहते हैं, "मनुष्य की प्राकृतिक वास्तविकता एक दुःखी चेतना है, जिसमें इस दुःख की अवस्था से पार जाने की कोई संभावना नहीं है।"[4] जबकि कृष्णमूर्ति की स्वतंत्रता में दुःख और निराशा का लेश मात्र भी नहीं है।

5. सार्त्र ईश्वर के अस्तित्व का खंडन करते हैं, जबकि कृष्णमूर्ति कहते हैं कि किसी के कहने से किसी चीज में विश्वास या अविश्वास मत कर लो, खुद छानबीन करो, खुद देखो। किसी और का खोजा हुआ सत्य तुम्हारे जीवन में रूपांतरण नहीं ला सकता है, तुम्हें इसे खुद अन्वेषण करना होगा, खुद देखना होगा, तभी वह तुम्हारा सत्य हो सकता है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन में मानव स्वातंत्र्य के संबंध में जे.पी. सार्त्र और जे. कृष्णमूर्ति के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया। इससे यह स्पष्ट होता है कि दोनों के विचारों में कई मूलभूत अंतर हैं और जे. कृष्णमूर्ति स्वतंत्रता के अधिक गहरे आयाम की बात करते हैं। सार्त्र के अनुसार मनुष्य स्वतंत्र होने के लिए बाध्य तो है लेकिन इस स्वतंत्रता में निराशा और पीड़ा

अपरिहार्य है और मनुष्य को इसे झेलना ही होगा। इसकी कोई दवा नहीं है। कृष्णमूर्ति कहते हैं कि मनुष्य की वर्तमान चेतना शून्य या रिक्त नहीं है, बल्कि यह हजारों सालों से संस्कारबद्ध है। यह हमारे अस्तित्व का बस एक सतही, छोटा सा और सीमित हिस्सा है। जब हम इस संस्कारबद्ध चेतना और इसकी प्रक्रिया के प्रति पूरी तरह सजग (बिना किसी चुनाव के) होते हैं तो तत्क्षण हम अस्तित्व के एक दूसरे आयाम में प्रवेश कर जाते हैं, जो संस्कारबद्ध नहीं है, यहां दुःख और निराशा की कोई छाया नहीं है। क्योंकि यह आयाम विचार और संघर्ष के क्षेत्र के बाहर है। तब हम बेशर्त और पूर्ण स्वतंत्र हैं। इसी आयाम में जीवन का अर्थ और उसकी पूर्णता है। इस आयाम को हम शब्दों में पूरी तरह व्यक्त नहीं कर सकते हैं अर्थात इसका वर्णन नहीं कर सकते हैं, हम इसे केवल जी सकते हैं। कृष्णमूर्ति इसे प्रज्ञा का जागरण (Awakening of Intelligence) कहते हैं। सार्त्र मनुष्य की वर्तमान चेतना को ही उसका संपूर्ण अस्तित्व मान लेते हैं, उनके लिए इसके परे अस्तित्व का कोई और आयाम नहीं है। वह इसी संस्कारबद्ध चेतना को ही पूर्ण और बेशर्त स्वतंत्र मान लेते हैं जबकि संस्कारबद्ध चेतना स्वतंत्र कैसे हो सकती है! इस संबंध में जे. कृष्णमूर्ति कहते हैं, "मैं देखता हूं कि विचार और विचारक दोनों बहुत सीमित हैं और मैं यहां नहीं रुकता हूं। यहां रुक जाना एक पूर्ण जड़वादी दर्शन होगा।"[5] इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वतंत्रता के संबंध में जे.कृष्णमूर्ति की अंतर्दृष्टि अत्यंत ही मौलिक और गहरी है जो हमें वास्तविक स्वतंत्रता की ओर ले जाती है।

संदर्भ :

1. Krishnamurti, J. (2010), Freedom from the Known Rider Books, UK,p.69.

2 .....,Ibid. p.24-25.

3. https://kfoundation.org/krishnamurti-the-network-of-thought-chapter-1/

4.Sartre,J.P.,Being and Nothingness,9th print,Trans.Hazel E. Barnes,Washington Square Press,New York,p.11,140.

5. Krishnamurti,J.(1972), Tradition and Revolution,p p.249.

6.मिश्रा,नित्यानंद(2014),समकालीन पाश्चात्य दर्शन,मोतीलाल बनारसी दास, पृष्ठ 139-146.

7. Vedaparayana,G.,The conditioned and unconditioned mind:J. Krishnamurti's Perspective, Indian Philosophical Quarterly XXX No 4, October 2003.

Copyright © 2025 Siri Research Foundation. This is an open access article distributed under the Creative Commons Attribution License (CC BY-NC-ND 4.0).